आज की नारी

Aaj ki Naari

नरी क्या नही कर सकती अर्थात् सब कुछ कर सकती हैं नारी ने सभी क्षेत्रों में सफलता के झंडे गाडे है।

आधुनिक काल में नारी समाजिक व्यवस्था में स्थान रखती है। पुरूषों की भांति ही वह उच्च शिक्षा ग्रहण करती है, सभी प्रकार की ट्रेनिग लेती है और घर की सीमाओं से बाहर निकलकर स्कूल, काॅलेजों, कार्यालयों, अस्पतालों आदि में अपनी कार्यक्षमतानुसार स्थान प्रप्त करती है। राजनीति, वैज्ञानिक संस्थान, पर्वतरोहपा, क्रीड़ा जगत, पुलिस, सेना आदि कोई भी क्षेत्र ऐसा नहीं जहाँ नारी का प्रवेश न होता हो। शिक्षा प्राप्ति और नौकरी से और कोई लाभ हुआ हो या न हुआ हो, एक लाभ यह अवश्य िकवह पुरूष की निरंकुशता से मुक्ति प्राप्त करती है। आर्थिक स्वावलंबन ने उसके आत्मविश्वास में वृद्धि की है और वह किसी भी समस्या से जुझने को तत्पर है। जिन लोगों को स्त्री की कार्यक्षमता में अविश्वास था, वे भी अब उसकी योग्यता के कायल होने लगे हैं। यही कारण कि नौकरी-पेशा पुरूष और स्त्रियों के वेतनमानों में कहीं कोई अन्तर नहीं दिखाई देता। बल्कि व्यवसायों में तो स्त्रियाँ जितनी कुशलता से कार्य कर सकती हैं, उतनी कुशलता से पुरूष उस काम को नहीं कर पाते। इसमें कोई संदेह नहीं कि आज की स्थिति गत शताब्दी की नारियों की अपेक्षा उन्नत हुई है।

लेकिन यह स्थिति का एक पक्ष है, जो देखने में बहुत स्वर्णिम लगता है। आधुनिक भारतीय नारी आज आधिक आत्म-विश्वासी, अधिक स्वतंत्र और साहसी दिखाई देती है। यह ठीक है लेकिन वास्तविकता यह है कि वह दिग्भ्रमित हो गई है स्नैहमयी, दयामयी, ममतालु नारी आज लुप्त होती जा रही है और मानवता के इन सभी गुणों का स्थान ले रही है एक प्रकार का यांत्रिकता, रूखापन, अधिकाधिक भौतिक सुख-सुविधाओं में जीने की हवस और आधुनिकता के नाम पर अधिक-से-अधिक प्रदर्शन की प्रवृति। उच्च शिक्षा प्राप्त करने के उपरांत हर लड़की का स्वप्न नौकरी करने का होता है। वह विवाह करती है परंतु पारिवारिक मान्यताएँ महत्वहीन होती जा रही हैं।

आधुनिक नारी बच्चों की शिक्षा-दीक्षा के लिए सैकड़ों-हजारों रूपये व्यय करने के लिए तैयार है परंतु नौकरी के सहारे बडे हो रहे बच्चे के लिए उसके पास समय का आभाव है। क्लबों-पाटियों और होटलों की संस्कृति का विकास तेजी से हो रहा है। माता-पिता के उचित संरक्षण का अभाव आगामी पीढ़ी को कुंठाग्रस्त बना देता है। प्रदर्शन की इस प्रवृति ने नारी को सहज मानवीय गुणों से वांचित कर दिया है, व्यक्तित्व का विकास अथवा आर्थिक समस्या जैसी चीज उसके जीवन में नहीं है। इस सिक्के का एक पहलू और भी है। भारत में अधिकांश नौकरी-पेशा महिलाएँ हैं जो पारिवारिक समस्याओं के समाधान के लिए घर के बाहर निकलती हैं। महानगरीय सभ्यता की आपाधापी में जीवन-स्तर उन्नत करने, बच्चों की शिक्षा और उनके उन्नत भविष्य की चिंता उन्हे घर से बाहर निकलने के लिए विवश कर देती है। इस प्रकार की स्त्रि का काम है-उसके मस्तिष्क पर एक बोझ बनाये रखती है। जिस कार्य के लिए वह वेतन लेती है, उस कार्य को अन्य सहकार्मियों के समान कुशलतापूर्वक करना भी उसका दायित्व है, अतः दोहरी चक्की में पिसना उसकी नियति बन गया है। कार्य पर जाने से पूर्व वह घर के आवश्यक कार्य करती है, दिन भर नौकरी और वापिस आने पर फिर वही पारिवारिक समस्याएँ। जीवन उसके लिए जैसे एक मशीन बनकी रह जाता है। इस स्थिति के लिए हमारी सामाजिक मान्यताये ही उत्तरदायी है। पुरूष प्रधान समाज में आधिपत्य प्रायः पुरूष का ही होता है। वह स्त्री से यह अपेक्षा करता है कि घर का प्रबंध भी सुचारू रूप् से होता रहे, पत्नी की नौकरी से धन भी आता रहे तथा उसे और बच्चों को कोई कष्ट भी न उठाना पडे। हम लोग ऊपर से चाहे कितने आधुनिक बनें, हमारे संस्कार और मस्तिष्क की संरचना में कहीं कोई बदलाव नहीं आ पाया है। सभी प्रकार से शिक्षित और सभ्य दिखाई देने वाला समाल अभी भी नारी की शारीरिक, आर्थिक विवशताओं और उसकी अतिशय भावुकता का लाभ उठाये बिना नहीं चुकता।